DIVYAYATAN
A JOURNAL OF LAKULISH YOGA UNIVERSITY

DIVYAYATAN -
A JOURNAL OF LAKULISH YOGA UNIVERSITY
Peer Reviewed Journal
E-ISSN: 3048-4928

स्थानांग सूत्र में ध्यान का स्वरूप

Kalpan Ajitbhai Shah

Research Scholar
Lakulish Yoga University

सार

प्रस्तुत शोध "स्थानांग सूत्र में ध्यान की अवधारणा" का दार्शनिक एवं साधनात्मक अध्ययन है। इसमें जैन दर्शन के अनुसार ध्यान के स्वरूप, उसके प्रकार, लक्ष्य तथा कर्म-सिद्धांत से उसके संबंध का विश्लेषण किया गया है। स्थानांग सूत्र में वर्णित आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल—इन चार प्रकार के ध्यानों के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि ध्यान केवल मानसिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि आत्मा की शुद्धि एवं मोक्ष प्राप्ति का प्रभावी साधन है। यह शोध जैन ध्यान परंपरा को वैज्ञानिक, नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से समझने का प्रयास करता है।

प्रस्तावना

मनुष्य के जीवन में ध्यान का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। ध्यान भारतीय संस्कृति तथा दर्शन की बहुमूल्य सम्पत्ति है। ध्यान ही एक ऐसी विद्या है जो प्रायः सभी धर्मों तथा दर्शनों में स्वीकृत है। यह ऐसी आध्यात्मिक साधना है जिसे कोई भी बिना किसी वर्ण, जाति, वर्ग या धर्म-विशेष की अपेक्षा के अपना सकता है। प्राचीन भारतीय धर्म, पुराण, इतिहास आदि के अवलोकन से ज्ञात होता है कि ध्यान-प्रणाली की परम्परा अविच्छिन्न रूप में चलती आयी है। वैदिक तथा अवैदिक वाङ्मय में आध्यात्मिक वर्णन बहुलता से पाया जाता है। इनका अन्तिम साध्य उच्च अवस्था की प्राप्ति है और ध्यान उसका एक साधन है।

साहित्य समीक्षा

इस शोध विषय से संबंधित जैन आगमिक तथा दार्शनिक साहित्य का गहन अध्ययन किया गया है। तत्त्वार्थसूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, ठाणं सूत्र और ध्यानशतक जैसे ग्रंथों में ध्यान के स्वरूप, प्रकार तथा उसके कार्मिक प्रभावों का विस्तार से विवेचन प्राप्त होता है। पातंजल योगसूत्र में ध्यान को चित्त की एकाग्र अवस्था माना गया है, जबकि जैन दर्शन में ध्यान को मन, वचन और काय—इन तीनों योगों की स्थिरता से जोड़ा गया है। आधुनिक विद्वानों द्वारा ध्यान को मनोवैज्ञानिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास से संबद्ध किया गया है। तथापि स्थानांग सूत्र के विशेष संदर्भ में ध्यान की दार्शनिक व्याख्या सीमित रूप में उपलब्ध है, जिसे यह शोध पूर्ण करने का प्रयास करता है।

शोध के उद्देश्य

इस शोध के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. स्थानांग सूत्र में वर्णित ध्यान की संकल्पना को स्पष्ट करना।
2. आर्त, रौद्र, धर्म एवं शुक्ल ध्यान के स्वरूप और उनके कर्मफल संबंध का विश्लेषण करना।
3. ध्यान और कर्म-सिद्धांत के पारस्परिक संबंध को दार्शनिक दृष्टि से समझना।
4. जैन ध्यान परंपरा की मोक्ष साधना में भूमिका को रेखांकित करना।

संशोधन पद्धति

प्रस्तुत शोध **पाठ्याधारित** एवं **विश्लेषणात्मक पद्धति** पर आधारित है। इसमें स्थानांग सूत्र, तत्त्वार्थसूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, तथा ध्यानशतक जैसे मूल जैन ग्रंथों का संदर्भात्मक अध्ययन किया गया है।

ध्यान का अर्थ और व्युत्पत्ति

ध्यान शब्द भारतीय दर्शन तथा योग का एक केंद्रीय स्तम्भ है। ध्यान शब्द की व्युत्पत्ति एवं परिभाषा भिन्न-भिन्न संदर्भों में सूक्ष्म अंतर रखती है, किन्तु इसका मूल अर्थ चित्त की स्थिरता से जुड़ा हुआ है।

व्याकरण शास्त्र की दृष्टि से, 'ध्यान' शब्द 'ध्ये चिन्तायाम्' धातु से निष्पन्न हुआ है, जिसका सामान्य अर्थ चिन्तन है।

योगमार्ग की अपेक्षा से देखे तो उत्तराध्ययन सूत्र: भगवान महावीर ने गणधर गौतम के प्रश्न का उत्तर देते हुए बताया था कि एक आलंबन पर मन को सन्निवेश (स्थिर) करने से चित्त का निरोध होता है। चित्तनिरोध का तात्पर्य है मन की चंचलता का निग्रह, मन की स्थिरता, या एक विषय पर मन का पूर्ण केन्द्रीकरण। मन की दो अवस्थाए है। चंचल और स्थिर। स्थिर अवस्था ही ध्यान है। योगमार्ग की अपेक्षा चित्त को किसी एक आलम्बन पर स्थिर करना ही 'ध्यान' माना गया है (अमर मुनि, 2011, Verse 29.26)।

तत्त्वार्थसूत्र में आचार्य उमास्वाति ने ध्यान को एकाग्रचित्त कहा है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि शरीर, वाणी और मन के निरोध को ध्यान कहा जाता है (उमास्वामी, 2017, Verse 9.27)।

पातंजल योगसूत्र में महर्षि पतंजलि ध्यान का संबंध केवल मन से स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार जिस स्थान पर चित्त को लगाया जाता है उसी में वृत्ति की एकतानता (अखंड प्रवाह) ध्यान है (अरण्य, 2021, Verse 3.2)।

जैन योग साधना में ध्यान की संकल्पना, पातंजल योग और विसुद्धि-मग्ग जैसे दर्शनों से मौलिक रूप से भिन्न है, जहाँ ध्यान को प्राथमिक रूप से एक मानसिक प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है। इसके विपरीत, जैन परम्परा में ध्यान को मानसिक, वाचिक और कायिक इन तीनों स्तरों पर स्वीकार किया गया है। पूर्ण ध्यान वह स्थिति है जब साधक संकल्पपूर्वक अपने शरीर को अचंचल (कायिक ध्यान), वाणी को स्थिर (वाचिक ध्यान), और मन को पूर्णतः एकाग्र (मानसिक ध्यान) करता है। इस अवस्था में, ये तीनों ध्यान एक साथ सध जाते हैं, जिससे एकाग्रता और आंतरिक अखंडता की सघनता चरम पर पहुँच जाती है। संक्षेप में, ध्यान वस्तुतः वह उच्च अवस्था है, जिसमें

© 2026 by Author

DIVYAYATAN
A JOURNAL OF LAKULISH YOGA UNIVERSITY
DIVYAYATAN -
A JOURNAL OF LAKULISH YOGA UNIVERSITY
Peer Reviewed Journal
E-ISSN: 3048-4928

साधक के चित्त की अपने आलम्बन (आधार) में पूर्ण एकाग्रता स्थापित हो जाती है। यह वह परिणति है जब मन, वचन और काय इन तीनों योगों की चंचल प्रवृत्ति पूर्ण स्थिरता में परिवर्तित हो जाती है। जैन योग दर्शन के अनुसार, तीनों योगों का निरोध एवं स्थिरता ही वास्तविक ध्यान है।

ध्यान का लक्ष्य

ध्यानयोग साधना का मूल प्रयोजन और उपलब्धि अत्यंत व्यापक है, जिसका अंतिम उद्देश्य आध्यात्मिक उत्थान है।

1. **परम लक्ष्य: मोक्ष एवं कर्म निर्जरा**

तपोयोगी साधक के ध्यान तप का परम लक्ष्य केवल मुक्ति प्राप्त करना है अर्थात् कर्म-बंधनों से विमुक्ति और जन्म-मरण के संसार चक्र से स्थायी छुटकारा। जैन योग के अनुसार, ध्यान की पूर्णता के लिए मन, वचन और काय तीनों योगों का निरोध अनिवार्य है। यह निरोध ही कर्मों की निर्जरा को संभव बनाता है, जो ध्यानयोग का मुख्य प्रयोजन है। चूंकि इन तीनों योगों की प्रवृत्ति ही आस्रव (कर्म प्रवाह) का कारण है, इसलिए इनका निरोध और स्थिरता ही संवरयोग की साधना को सिद्ध करती है।

2. **चित्त शुद्धि एवं आत्म-साक्षात्कार**

ध्यान का एक प्राथमिक उद्देश्य मन की चंचलता पर नियंत्रण स्थापित करना है। ध्यान के निरंतर अभ्यास से साधक विषयों/पदार्थों के प्रति अपनी आसक्ति को भंग करता है, जिसका परिणाम दुःख से मुक्ति के रूप में प्राप्त होता है। इस प्रक्रिया द्वारा मन (चित्त) अन्तर्मुखी, शुद्ध, और अधिक सशक्त बनता है।

a. **सत्य की खोज**

ध्यान को एक निवृत्तिपरक मार्ग स्वीकार किया गया है, जिसके अनुसरण से तपोयोगी साधक चित्त को एकाग्र करके चेतना के गहनतम स्तरों में प्रवेश करता है और आध्यात्मिक सत्य की खोज करता है। इस साधना का प्रमुख प्रतिफल शुद्धात्मा का अनुभव है। ध्यान के बल पर साधक कषायात्मा के अनुभव का अतिक्रमण करते हुए आत्मा के शुद्ध स्वरूप का साक्षात्कार करता है। इस प्रक्रिया के माध्यम से, वह अपने ज्ञायक भाव को पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित करने में सफल होता है।

b. शक्ति संचयन एवं विकास

ध्यान से असीम शक्ति का संचयन होता है। आध्यात्मिक रूप से, जहाँ प्रवृत्ति शक्ति का क्षरण करती है, वहीं निवृत्ति (स्थिरता) उसका संग्रह करती है। यह प्रक्रिया उस आतिशी शीशे के समान है जो सूर्य की बिखरी हुई किरणों को घनीभूत करके ध्यानाग्नि उत्पन्न करता है। यह एकाग्र आत्मशक्ति कर्म-मल को जलाकर आत्मा को शुद्ध करने का कार्य करती है।

3. मानसिक क्षमता वृद्धि

ध्यान से स्मृति, विश्लेषण और चयन जैसी शक्तियों का विकास होता है। मन को शक्तिशाली बनाने का उपाय ध्यान है, वैसे ही जैसे पावर हाउस को शक्तिशाली बनाने के लिए नई विद्युत का उत्पादन और संचयन किया जाता है।

मन की चंचलता को रोकने से साधक को अतीन्द्रिय ज्ञान प्राप्त होता है, उसकी अन्तर्दृष्टि जागृत होती है, लेश्या रूपान्तरित होती है, और चक्रस्थान (चैतन्य केन्द्र) जागृत हो जाते हैं।

संक्षेप में, ध्यान का लक्ष्य एक प्रक्रियागत लक्ष्य है: मन-वचन-काय की प्रवृत्ति को रोककर उन्हें स्थिर करना, जिसका अंतिम फल मोक्ष, कर्मों की निर्जरा, और आत्मिक शक्तियों का चरम विकास है।

मन की चंचलता का कारण

मनुष्य के चित्त की चंचलता उसकी साधना और एकाग्रता में सबसे बड़ी बाधा है। स्रोतों के अनुसार, मन के अस्थिर रहने के प्रमुख कारण वृत्तियाँ (मानसिक प्रवृत्तियाँ) हैं, जिनकी उत्तेजना और सक्रियता में वातावरण सहायक होता है।

1. वृत्तियों की व्यापकता

मन उतना ही अधिक चंचल होता है, जितना वृत्तियों का दायरा विस्तृत होता है और उनकी उत्तेजना अधिक होती है। इसके विपरीत, जब वृत्तियाँ क्षीण, सीमित और संकुचित होती हैं, तो मन की चंचलता कम हो जाती है।

2. कालानुसार वृत्तियों के रूप

ये वृत्तियाँ मुख्य रूप से तीन कालों से संबंधित होती हैं और ध्यान योगी के चित्त में विक्षेप उत्पन्न करती हैं:

वर्तमान काल सम्बन्धी वृत्तियाँ:

ये अल्पकालिक अथवा क्षणिक होती हैं, जिनकी स्मृति मस्तिष्क में रह जाती है और गहरे संस्कारों का निर्माण करती है (सुरणा, 1999, pp. 251–253)।

भूतकाल सम्बन्धी वृत्तियाँ (संस्कार):

ये अनुभव स्मृति और संस्कारों के रूप में संचित रहते हैं। जब साधक चित्त को एकाग्र करने का प्रयास करता है, तो उसका अवचेतन मन सक्रिय हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप, केवल वर्तमान ही नहीं, बल्कि पूर्वजन्मों के संचित संस्कार भी उभरकर सामने आ जाते हैं। ये प्रकटीकरण साधक के मानस को विक्षुब्ध कर देते हैं, भले ही वर्तमान जीवन में उनका प्रत्यक्ष अनुभव न किया गया हो।

भविष्य काल सम्बन्धी वृत्तियाँ (कल्पनाएँ):

ये विक्षोभ संकल्प-विकल्प, आशा-निराशा, सफलता-असफलता के द्वंद्व तथा विविध चिंताओं और दुश्चिंताओं के रूप में प्रकट होते हैं।

ध्यान साधना में, भूतकाल और भविष्यकाल सम्बन्धी वृत्तियाँ ही सबसे अधिक विक्षेप उत्पन्न करती हैं।

राग-द्वेष और विक्षोभ

मन की चंचलता का आधार राग (आसक्ति) और द्वेष (विरोध) पर रहा हुआ है। अनुकूल वृत्तियाँ राग का तथा प्रतिकूल वृत्तियाँ द्वेष का कारण बनती हैं, जिससे मन उद्वलित और अस्थिर बना रहता है। चित्त-शुद्धि हेतु इन संस्कारों को निर्जीर्ण करना आवश्यक है, जिसके लिए साधक इन वृत्तियों की केवल प्रेक्षा करता है और अपने ध्येय पर दृढ़ रहते हुए उनमें राग-द्वेष नहीं करता।

ध्यान का समय

यद्यपि अध्यात्मयोगी दीर्घकाल तक ध्यान करना चाहता है, किंतु अनादि काल से बहिर्मुखी रहे मन और इंद्रियों के कारण ध्यान का प्रवाह लम्बे समय तक बनाए रखना कठिन होता है। साधक के अंतर्मुखी प्रयास के बावजूद, मन एक दुष्ट अश्व की तरह भागता है, जिसे सतत अभ्यास और वैराग्य से धीरे-धीरे स्थिर किया जाता है।

जैन योग के अनुसार, अनंत पर्यायात्मक द्रव्य की एक पर्याय पर चित्त अधिकतम अन्तर्मुहूर्त (48 मिनट से कम) तक ही निश्चल रह सकता है (उमास्वामी, 2017, Verse 9.27)।

हालाँकि, ध्येय को बदलने या अनेक पर्यायों का आलम्बन लेने से ध्यान का प्रवाह दीर्घकाल तक चल सकता है (ભાનુવિજય, 1971, Verse 4)।

धारणा: ध्यान की पूर्वपीठिका

© 2026 by Author

DIVYAYATAN
A JOURNAL OF LAKULISH YOGA UNIVERSITY
DIVYAYATAN -
A JOURNAL OF LAKULISH YOGA UNIVERSITY
Peer Reviewed Journal
E-ISSN: 3048-4928

धारणा को ध्यान की आधारभूमि माना गया है। यह वह अभ्यास है जिसमें चंचल मन को अचानक एक ध्येय पर स्थिर करने के बजाय, उसकी चंचलता को क्रमिक रूप से सीमित किया जाता है। साधक का लक्ष्य मन को असंख्य भावों और विचारों से हटाकर, पहले सात, पाँच, तीन या दो स्थानों पर केंद्रित करना होता है, और अंततः उसे एक स्थान पर रोकने का प्रयास किया जाता है। जब मन एक बिंदु पर रुकने का अभ्यस्त हो जाता है, तभी ध्यान की स्थिति निष्पन्न होती है।

धारणा का शाब्दिक अर्थ है चित्त को एकाग्र करने हेतु किसी एक देश-स्थानविशेष पर स्थापित या संलग्न करना। योगसूत्रकार महर्षि पतंजलि ने इसे "देशबन्धश्चित्तस्य धारणा" सूत्र द्वारा परिभाषित किया है, जिसका आशय है चित्त को किसी स्थानविशेष पर बाँधना (अरण्य, 2021, Verse 3.1)।

धारणा और ध्यान में अंतर :-

धारणा और ध्यान का प्रमुख अंतर इस प्रकार है:

धारणा: साधक ध्येय के एक देश में अपनी चित्तवृत्ति को स्थापित करता है।

ध्यान: उस स्थापित देशविशेष पर ध्येय वस्तु के ज्ञान की एकतानता (अखंड प्रवाह) या एकाग्रता निष्पन्न होती है।

दूसरे शब्दों में, धारणा चित्त को एक स्थान पर स्थापित करने की क्रिया है, जबकि ध्यान उस स्थान पर चित्त के ज्ञान प्रवाह का एकाकार और अत्यन्त एकाग्र हो जाना है।

ध्यान के प्रकार:

आर्त ध्यान (मुनि नथमल, 2033, Verse 4.61-4.62)

आर्त ध्यान दुःख, पीड़ा और वेदना से चिह्नित एक मानसिक स्थिति है। यह इच्छा की वस्तुओं या दर्दनाक बीमारियों पर ध्यान केंद्रित करने से उत्पन्न होता है। इस प्रकार, यह एक विषय पर मन की एकाग्रता (एकाग्रचित्त) को दर्शाता है, लेकिन यह एकाग्रता नकारात्मक भावनाओं और इच्छाओं पर केंद्रित होती है, जिससे दुःख और बंधन में वृद्धि होती है। इसमें प्रतिकूल वस्तुओं या स्थितियों से छुटकारा पाने, दुःख को समाप्त करने की चिंता, सुखद भावनाओं से अत्यधिक उपभोग, और अधूरी इच्छाओं को पूरा करने की चिंता पर लगातार ध्यान केंद्रित करना शामिल है। व्यक्ति अक्सर बेचैन, संघर्षरत और अधीर होता है।

आर्त ध्यान के चार प्रकार:

1. **इष्टवियोग** (वांछित से अलगाव): प्रिय व्यक्तियों या वस्तुओं (जैसे धन, जीवनसाथी, बच्चा) से अलगाव के कारण मानसिक संकट और उनके पुनर्मिलन की लालसा। यह मोहनीय कर्म के उदय से उत्पन्न होता है, जो आसक्ति (राग) और विरक्ति (द्वेष) को जन्म देता है, और अशुद्ध कर्मों के नए बंधन का कारण बनता है।
2. **अनिष्टसंयोग** (अवांछित के साथ मिलन): अप्रिय व्यक्तियों या वस्तुओं के साथ मिलन से उत्पन्न मानसिक संकट और उन्हें हटाने की इच्छा। यह भी मोहनीय कर्म के प्रभावों से जुड़ा है, जो द्वेष के माध्यम से आत्मा पर कर्मों का भार बढ़ाता है।
3. **पीड़ाचिंतन** (पीड़ा/कष्ट का चिंतन): शारीरिक या मानसिक पीड़ा के कारण बेचैनी और अशांति, या कम पीड़ा के लिए लगातार इच्छाएँ। यह वेदनीय कर्म के अनुभवों के प्रति प्रतिक्रिया है, जहाँ आत्मा पीड़ा को स्वीकार करने के बजाय उससे विचलित होती है, जिससे दुःख का चक्र जारी रहता है।
4. **निदान** (भविष्य के सुखों की प्रत्याशा): भविष्य के बेहतर सांसारिक सुखों और आराम के लिए लगातार इच्छाएँ, अक्सर धार्मिक गतिविधियों के फल के रूप में भौतिक लाभ की अपेक्षा के साथ। यह लोभ और मोहनीय कर्म के प्रभाव में होता है, जहाँ आध्यात्मिक प्रयासों का उपयोग भौतिक लाभों के लिए किया जाता है, जिससे कर्मों का क्षय नहीं होता बल्कि उनका संचय होता है।

आर्त ध्यान के लक्षण हैं - आक्रन्द करना, शोक करना, आँसू बहाना, विलाप करना। स्थानांग सूत्र के अनुसार, आर्त ध्यान को एक अशुभ मनोवैज्ञानिक स्थिति माना गया है जो दुःख और अधोगति में ले जाता है, क्योंकि यह आत्मा पर अशुद्ध कर्मों का भारी बोझ डालता है। शुभ रूपों में संक्रमण के लिए आध्यात्मिकता के महत्व को महसूस करना और शुभ विचारों के साथ अभ्यास करने के लिए प्रतिबद्ध होना आवश्यक है।

आर्त ध्यान को चार उप प्रकारों में विस्तृत रूप से विभाजित करना, जिसमें इच्छा, हानि और घृणा से संबंधित भावनात्मक और मानसिक पीड़ा के विभिन्न रूपों को शामिल किया गया है, जो जैन दर्शन में मानव मनोविज्ञान की एक परिष्कृत समझ को दर्शाता है। आर्त ध्यान को बंधन और अधोगति की ओर ले जाने वाले ध्यान के रूप में वर्गीकृत करना आधुनिक ध्यान की समझ के लिए एक विरोधाभास प्रस्तुत करता है, क्योंकि ध्यान को स्वाभाविक रूप से लाभकारी माना जाता है।

रौद्र ध्यान (मुनि नथमल, 2033, Verse 4.63-4.64)

रौद्र ध्यान क्रूर विचारों और इरादों से जुड़ा है। इसमें प्रतिशोध, हिंसा, घृणा, क्रोध और अन्य अशुभ कार्यों व विचारों में मन का लीन (एकाग्रह) हो जाना शामिल है। यह एक प्रकार का ध्यान ही है, जहाँ चित्त (मन) इन नकारात्मक विषयों पर एकाग्र होता है, जिससे यह रौद्र ध्यान की अवस्था को जन्म देता है। व्यक्ति घृणित शारीरिक क्रियाओं या द्वेषपूर्ण भाषा का प्रयोग करता है और ऐसे पापपूर्ण कार्यों को करने में आनंद भी लेता है।

रौद्र ध्यान के चार उप प्रकार है जो नीचे दिये गये हैं-

1. **हिंसानंदी** (हिंसा में आनंद)

जीवित प्राणियों को चिढ़ाने, चोट पहुँचाने या मारने से उत्पन्न होने वाले आनंद के विचार, जिसमें प्रतिशोध का चिंतन, हिंसा की योजना बनाना और युद्ध के दृश्यों का आनंद लेना शामिल है। यह पाप कर्मों के भारी संचय का कारण बनता है, विशेषकर आयु कर्म और नाम कर्म को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है, जिससे आत्मा अधोगति में जाती है।"

2. **मृषानंदी** (झूठ में आनंद)

पापपूर्ण इरादों से दूषित झूठी कल्पना से जुड़े विचार, असत्य में आनंद लेना, भोले-भाले लोगों को धोखा देना और जानबूझकर झूठ बोलना। यह भी अशुभ कर्मों को बांधता है, विशेषकर मोहनीय और नाम कर्म को, जिससे सत्य और नैतिकता से आत्मा का विचलन होता है।

3. **चौर्यानंदी** (चोरी में आनंद)

अनुमति के बिना वस्तुओं को धोखाधड़ी से प्राप्त करने के लिए चोरी, धोखे और अन्य भयावह कृत्यों का चिंतन करना, और दूसरों को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित करना। अदत्तादान (चोरी) के कारण यह अशुभ कर्मों को बांधता है, जो अंततः आत्मा को दरिद्रता और अशांति की ओर ले जाता है।

4. **विषयसंरक्षणानंदी** (संपत्ति की रक्षा में आनंद)

भौतिक धन और भौतिक सुख सुविधाओं के साधनों को प्राप्त करने और बनाए रखने की प्रवृत्ति और विचारों का चिंतन करना। यह अत्यधिक परिग्रह (संग्रह) और मोहनीय कर्म के प्रभाव को दर्शाता है, जो आत्मा को सांसारिक बंधनों में जकड़े रखता है और आध्यात्मिक उन्नति को बाधित करता है।

रौद्र ध्यान के लक्षण:

- उत्सन्न दोष: हिंसा आदि प्रवृत्ति में रहना।
- बहुदोष: हिंसा आदि की विविध प्रवृत्तियों में संलग्न रहना।
- अज्ञान दोष: अज्ञानवश हिंसा आदि प्रवृत्ति में रहना।
- अमरणांत दोष: मरणांतक हिंसा आदि के प्रति अनुताप न होना।

© 2026 by Author

DIVYAYATAN
A JOURNAL OF LAKULISH YOGA UNIVERSITY
DIVYAYATAN -
A JOURNAL OF LAKULISH YOGA UNIVERSITY
Peer Reviewed Journal
E-ISSN: 3048-4928

आर्त ध्यान के समान, रौद्र ध्यान में भी व्यक्ति में आत्म संयम की कमी होती है या न्यूनतम रूप से विकसित होता है। स्थानांग सूत्र के अनुसार, यह ध्यान दुःख और अधोगति की ओर ले जाता है क्योंकि यह आत्मा पर अत्यधिक अशुभ कर्मों का बोझ डालता है। धार्मिकता और आध्यात्मिक प्रगति के मार्ग पर चलने के लिए, इन भयावह ध्यान को त्यागना और परोपकारी ध्यान करना चाहिए। यह बदलाव केवल आध्यात्मिक विनाश को महसूस करने पर होता है, जिससे आत्म-सुधार और सम्मानजनक आचरण के निर्माण के लिए एक दृढ़ प्रतिबद्धता होती है।

रौद्र ध्यान के उप प्रकारों एवं लक्षणों का विवरण जैन दर्शन के नैतिक ढांचे को दर्शाता है, जो न केवल बाहरी कार्यों बल्कि आंतरिक मानसिक अवस्थाओं को भी कार्मिक परिणामों के लिए जिम्मेदार मानता है। रौद्र ध्यान को "दुष्प्रवृत्तियों से अनुबंधित चित्तवृत्ति" के रूप में परिभाषित करना और इसके "भयंकर फल" के बारे में चेतावनी देना जैन दर्शन में मानसिक अनुशासन के महत्व को रेखांकित करता है। यह सूचित करता है कि अनियंत्रित नकारात्मक विचार केवल आंतरिक अशांति का कारण नहीं बनते हैं, बल्कि आत्मा को कर्मों से बांधते हैं और मोक्ष मार्ग से दूर करते हैं। यह विशेष रूप से मोहनीय कर्म और अशुभ नाम कर्म के बंधन को मजबूत करता है।

धर्म ध्यान (मुनि नथमल, 2033, Verse 4.65-4.68)

धर्म ध्यान शुद्ध विचारों में मन की स्थिरता है, मुख्य रूप से धार्मिक चिंतन पर ध्यान केंद्रित करता है। यह एक प्रकार का शुभ ध्यान है, जहाँ चित्त (मन) धर्म से संबंधित विषयों पर एकाग्र होकर स्थिर होता है। इसका उद्देश्य आत्मा के दोषरहित रूप की कल्पना करना और उसे प्राप्त करना है। यह धर्म से संबंधित है, जिसमें पदार्थ की प्रकृति, दस गुण, भिक्षु का आचरण या अहिंसा शामिल होते हैं।

धर्म ध्यान की चार प्रकार की अनुप्रेक्षा -

1. **आज्ञा विचय**

शास्त्रों के अनुसार सत्य के सिद्धांतों पर चिंतन करना। इसमें सर्वज्ञ द्वारा बताए गए धार्मिक सत्य के बारे में कोई संदेह नहीं करना शामिल है, भले ही व्यक्ति अपनी कम क्षमता के कारण इसे पूरी तरह से समझ न पाए। यह सम्यग्दर्शन (सही विश्वास) को पुष्ट करता है और ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम में सहायक होता है।

2. **अपाय विचय** –

अपनी और दूसरों की आसक्ति, घृणा और भ्रम जैसी भावनाओं को नष्ट करने पर ध्यान करना। इसमें यह समझना शामिल है कि क्या बंधन की ओर ले जाता है और क्या मुक्ति की ओर ले जाता है। यह मोहनीय कर्म के क्षय में सहायक है और आत्मा को राग द्वेष से मुक्त करता है।

3. **विपाक विचय**

स्वयं और दूसरों के सुख और दुःख को देखकर कार्मिक प्रभावों की प्रकृति पर चिंतन करना। इसमें विभिन्न कर्मों के परिणामों को समझना शामिल है, जैसे कि ज्ञानावरणिय कर्म के कारण बुद्धि की कमी, दर्शनावरणिय कर्म के कारण संवेदन कमी, वेदनीय कर्म के कारण सुख, मोहनीय कर्म के कारण भ्रम, आयु कर्म के कारण बार बार जन्म, और गोत्र कर्म के कारण सामाजिक स्थिति। यह कर्म सिद्धांत की गहरी समझ विकसित करता है और सम्यग्ज्ञान (सही ज्ञान) को मजबूत करता है, जिससे अशुभ कर्मों से विरक्ति उत्पन्न होती है।

4. **संस्थान विचय**

ब्रह्मांड की प्रकृति और संरचना पर ध्यान करना (लोकस्वरूप)। इस की तुलना हम रूपस्थ ध्यान के साथ कर सकते है। यह आत्मा को सांसारिक मोह से ऊपर उठने में मदद करता है और नाम कर्म के स्वभाव को समझने में सहायक होता है।

धर्म ध्यान के लक्षण:

- आज्ञा रूचि: प्रवचन में श्रद्धा होना।
- निःसर्ग रूचि: सहज ही सत्य में श्रद्धा होना।
- सूत्र रूचि: सूत्र पढ़ने के द्वारा श्रद्धा होना।
- अवगाह रूचि: विस्तृत पद्धति से सत्य में श्रद्धा होना।

स्थानांग सूत्र के अनुसार, धर्म ध्यान मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है क्योंकि यह शुभ कर्मों को बांधता है और अशुभ कर्मों का क्षय करता है। यह आत्मा की शुद्धि, कर्मों के विनाश और अंततः, दिव्य सुख और मुक्ति की प्राप्ति की ओर ले जाता है। यह मानसिक स्थिरता प्राप्त करने में मदद करता है और अभ्यासकर्ता को शुक्ल ध्यान के लिए तैयार करता है। धर्म ध्यान को "शुद्ध विचारों में मन की स्थिरता" और "मोक्ष के उपाय" के रूप में परिभाषित करना जैन धर्म में ध्यान के सकारात्मक, रचनात्मक पहलू को दर्शाया है। यह दर्शाता है कि यह केवल नकारात्मक मानसिक अवस्थाओं से बचना नहीं है, बल्कि सक्रिय रूप से उन मानसिक अवस्थाओं को विकसित करना है जो आत्मा को शुद्ध करती हैं और कर्मों को क्षय करती हैं। यह ध्यान को एक सक्रिय, परिवर्तनकारी प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करता है, न कि केवल एक निष्क्रिय चिंतन के रूप में।

शुक्ल ध्यान (मुनि नथमल, 2033, Verse 4.69-4.72)

शुक्ल ध्यान अत्यधिक मानसिक शुद्धता और एकाग्रता की स्थिति है, जो पूर्ण समाधि (अवशोषण) का प्रतिनिधित्व करता है। यह ध्यान का सर्वोच्च रूप है, जहाँ चित्त (मन) अपनी परम एकाग्रता को प्राप्त कर लेता है, जिससे आत्म साक्षात्कार के द्वार खुल जाते हैं। इसमें चार विशेषताएँ हैं: अव्यथा (दुःख की अनुपस्थिति), असम्मोह (भ्रम की अनुपस्थिति), विवेक (शरीर और आत्मा के बीच भेद का ज्ञान), और व्युत्सर्ग (शरीर और उपाधि में अनासक्त भाव)।

शुक्ल ध्यान के चार चरण:

1. **पृथक्त्व वितर्क सविचार**

इस चरण में, शास्त्रों के ज्ञान (श्रुतज्ञान) के आधार पर विभिन्न पदार्थों, गुणों और संशोधनों पर चिंतन शामिल है, जिसमें विचार, अभिव्यक्ति और ध्यान में परिवर्तन होते रहते हैं। यह आत्मा को ज्ञानावरणीय कर्मों से मुक्त करना शुरू करता है और सम्यग्ज्ञान को स्थिर करता है।

2. **एकत्व वितर्क अविचार**

इस चरण में, शास्त्र ज्ञान के आधार पर, एक ही पदार्थ, गुण या संशोधन पर चिंतन होता है, जिसमें विचार, अभिव्यक्ति या गतिविधियों में कोई परिवर्तन नहीं होता है। यह विविधता (पृथक्त्व) और संक्रमण (विचार) से मुक्त है। ध्यान करने वाला एक वस्तु पर ध्यान केंद्रित करता है, और पदार्थ, मोड़, शब्द या गतिविधि में कोई बदलाव नहीं होता है। यह ध्यान उन तपस्वियों द्वारा अभ्यास किया जाता है जिन्होंने मोहनीय कर्म को नष्ट कर दिया है और क्षीणकषाय गुणस्थान तक पहुँच गए हैं। इस ध्यान की शक्ति के माध्यम से, आत्मा शेष विनाशकारी कर्मों (घातिया कर्म: ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय कर्म) को नष्ट कर देती है और एक विरक्त, सर्वज्ञ, शरीरधारी सर्वोच्च प्राणी बन जाती है।

3. **सूक्ष्मक्रिया अनिवृति**

सूक्ष्म क्रियाओं का रुक जाना और वापस न लौटना। इस अवस्था में, साधक की मानसिक (मन) और वाचिक (वाणी) से संबंधित सभी गतिविधियाँ पूरी तरह से शांत हो जाती हैं। हालाँकि, साँस जैसी अत्यंत सूक्ष्म शारीरिक गतिविधियाँ अभी भी बनी रहती हैं। इस अवस्था में पहुँचने के बाद साधक आध्यात्मिक रूप से पीछे नहीं हटता, बल्कि

© 2026 by Author

DIVYAYATAN
A JOURNAL OF LAKULISH YOGA UNIVERSITY
DIVYAYATAN -
A JOURNAL OF LAKULISH YOGA UNIVERSITY
Peer Reviewed Journal
E-ISSN: 3048-4928

आगे ही बढ़ता है। यह अवस्था केवल सयोग केवली के जीवन के अंतिम अंतर्मुहूर्त (एक बहुत छोटी अवधि) में होती है। इस चरण में, आत्मा शेष अघातिया कर्मों (वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्म) को नष्ट करने की तैयारी करती है।

4. **स्वमूच्छिन्न क्रिया अप्रतिपाति**

यह शुक्ल ध्यान का चौथा और अंतिम चरण है। यह ध्यान भी वितर्क और विचार से मुक्त है, और इसमें सभी गतिविधियों का पूर्ण विराम शामिल है। आत्मा के सभी प्रदेश गतिहीन हो जाते हैं, जिससे आत्मा अयोगी बन जाती है। कोई मानसिक, वाचिक या शारीरिक गतिविधि नहीं होती है। इस ध्यान की शक्ति के माध्यम से, सभी शेष कर्म (अघातिया कर्म) नष्ट हो जाते हैं, और शरीर से मुक्त आत्मा, स्वाभाविक रूप से ब्रह्मांड के शीर्ष पर चढ़ जाती है, वहाँ एक शरीरहीन अवस्था में स्थिर हो जाती है। यह ध्यान सिद्ध अवस्था और दुःख से शाश्वत मुक्ति की ओर ले जाता है।

स्थानांग सूत्र के अनुसार, शुक्ल ध्यान मोक्ष (मुक्ति) का सीधा मार्ग है। यह सभी कर्मों के पूर्ण विनाश, सर्वज्ञता (केवल ज्ञान) की प्राप्ति, और शुद्ध चेतना और अनंत आनंद की अंतिम अवस्था की ओर ले जाता है। वर्तमान युग में उपयुक्त परिस्थितियों और पूर्ण ज्ञान की कमी के कारण इसका अभ्यास करना बहुत कठिन माना जाता है।

ध्यान और कर्म का संबंध

ध्यान का कर्म के साथ भी गहरा संबंध है। इसका महत्व बताते हुए कहा है कि- ध्यान सिर्फ़ हमारी मानसिक अवस्थाएँ नहीं बताते हैं, बल्कि यह भी दिखाते हैं कि ये हमारे नैतिक व्यवहार और कर्मों के जमा होने या ख़त्म होने पर कैसे असर डालते हैं।

जैन धर्म में कर्म को आत्मा से जुड़े हुए सूक्ष्म कार्मिक कणों का प्रवाह माना है, जो मन, वचन और शरीर की क्रियाओं से जुड़ते हैं। ये कर्म आत्मा के शुद्ध स्वरूप को ढँक कर उसे संसार में बाँधे रखते हैं। स्थानांग सूत्र में सीधे कर्मों का विस्तृत वर्गीकरण न होते हुए भी, इसके चार ध्यान प्रकार सीधे शुभ अशुभ कर्मों के बंधन और क्षय से जुड़े हैं। यह साफ़ दिखाता है कि हमारी मानसिक अवस्थाओं का सीधा कार्मिक परिणाम होता है (उमास्वामी, 2017, Verse 6.1)।

उदाहरण के तोर पर देखे तो बगुला मछली पकड़ने के लिए एकाग्रता से ध्यान लगाता है, किन्तु उसका पूरा ध्यान सिर्फ़ मछली पकड़ने, यानी अपनी इच्छा पूरी करने पर होता है। यह एकाग्रता भले ही तीव्र हो, पर इसके पीछे का भाव स्वार्थ और हिंसा (मछली को मारने का) का है। जैन दर्शन में, इस तरह की एकाग्रता को अशुभ ध्यान के अंतर्गत देखा जा सकता है।

किंतु एक जैन मुनि जब सामायिक (समता भाव से आत्मा में स्थिर होना) का अभ्यास करते हैं, तो वे शुभ ध्यान में होते हैं। वे अपने मन को राग द्वेष से हटाकर आत्मा के शुद्ध स्वरूप पर केंद्रित करते हैं। वे सभी जीवों के प्रति मैत्री भाव रखते हुए, सांसारिक इच्छाओं का त्याग करते हैं और आत्म चिंतन में लीन रहते हैं। यह एकाग्रता आत्मा को कर्मों से मुक्त करने और मोक्ष की ओर बढ़ने में सहायता करती है, क्योंकि इसके पीछे का भाव आत्म शुद्धि और अहिंसा का होता है। जैन दर्शन में, इस तरह की एकाग्रता को शुभ ध्यान के अंतर्गत देखा जा सकता है।

कर्म मुख्यतः आठ प्रकार के हैं (उमास्वामी, 2017, Verse 8.4):

- **घातिया कर्म** (विनाशकारी): ये आत्मा के मूल गुणों को ढँकते हैं, जैसे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय कर्म।
- **अघातिया कर्म** (अविनाशकारी): ये आत्मा के भौतिक अस्तित्व को तय करते हैं, जैसे वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र कर्म।

कर्मों का बंधन आत्मा की कषायों (क्रोध, मान, माया, लोभ) और योग (मन, वचन, काय की प्रवृत्ति) के कारण होता है। यह बंधन चार प्रकार का है: प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंध।

ध्यान और कर्म का सीधा संबंध है। जैन ध्यान में, आर्त और रौद्र ध्यान अशुभ माने जाते हैं क्योंकि वे मोहनीय कर्म और अन्य कर्मों का बंधन बढ़ाते हैं, जिससे आत्मा संसार में फँसी रहती है। इसके उलट, धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान शुभ माने जाते हैं क्योंकि वे मोहनीय कर्म को कम करते हैं और अंततः सभी आठ कर्मों को खत्म करके मोक्ष की ओर ले जाते हैं।

इस तरह, जैन दर्शन में शुभ ध्यान एक कर्म विनाशक प्रक्रिया है जो आत्मा को उसके शुद्ध स्वरूप की ओर ले जाती है। स्थानांग सूत्र के ध्यान प्रकार इसी कर्म सिद्धांत के व्यावहारिक रूप हैं, जो दिखाते हैं कि हमारे विचार और भावनाएँ हमारे कार्मिक भविष्य को कैसे प्रभावित करती हैं।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध के माध्यम से यह स्पष्ट रूप से स्थापित होता है कि स्थानांग सूत्र में प्रतिपादित ध्यान की संकल्पना केवल मानसिक एकाग्रता तक सीमित नहीं है, बल्कि वह मन, वचन और काय—तीनों योगों की सम्यक् स्थिरता से संबद्ध एक बहुआयामी आध्यात्मिक प्रक्रिया है। स्थानांग सूत्र में वर्णित आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल—इन चार प्रकार के ध्यानों का विवेचन यह सिद्ध करता है कि प्रत्येक ध्यान का सीधा संबंध आत्मा के बंधन या मोक्ष से जुड़ा हुआ है।

आर्त और रौद्र ध्यान जहाँ अशुभ कर्मों के बंधन को पुष्ट करते हैं, वहीं धर्म और शुक्ल ध्यान आत्मा की शुद्धि, कर्म-निर्जरा और मोक्ष-साधना के प्रभावी साधन सिद्ध होते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जैन दर्शन में ध्यान मात्र साधना नहीं, बल्कि एक कार्मिक परिवर्तन की वैज्ञानिक प्रक्रिया है।

इस शोध से यह भी स्पष्ट हुआ कि ध्यान और कर्म-सिद्धांत का संबंध कारण–कार्य (Cause–Effect) के सिद्धांत पर आधारित है, जहाँ प्रत्येक मानसिक अवस्था आत्मा के भविष्यगत स्वरूप को निर्धारित करती है। शुक्ल ध्यान को स्थानांग सूत्र में मोक्ष का प्रत्यक्ष साधन स्वीकार किया जाना जैन साधना-पद्धति की उच्चतम चेतना-दृष्टि को प्रकट करता है।

अतः यह कहा जा सकता है कि स्थानांग सूत्र में ध्यान न केवल आत्मिक शुद्धि का साधन है, बल्कि वह जैन मोक्ष-दर्शन की केन्द्रीय धुरी भी है। प्रस्तुत अध्ययन जैन ध्यान परंपरा को दार्शनिक, नैतिक और आध्यात्मिक तीनों स्तरों पर समझने में एक सुसंगत दृष्टिकोण प्रदान करता है।

BIBLIOGRAPHY

अमर मुनि. (2011). *सचित्र उत्तराध्ययन सूत्र*. पदम प्रकाशन.

अरण्यहरिहरानंद. (2021). *पातंजल योगदर्शन*. मोतीलाल बनारसीदास इंटरनेशनल.

उमास्वामी. (2017). *तत्त्वार्थसूत्र* (शास्त्रीकैलाशचन्द्र, Ed.). जैन विद्यापीठ.

मुनि नथमल. (1976). *ठाणं*. जैन विश्व भारती.

सुरणाश्रीचंद (Ed.). (1999). *सचित्र आचारांग सूत्र*. पद्म प्रकाशन.

ભાનુવિજય (Ed.). (1971). *ધ્યાનશતક*. દિવ્યદર્શન કાર્યાલય.

© 2026 by Author